आचार्य हस्ती के श्रमण-जीवन का वैशिष्ट्य

श्री ज्ञानेन्द्र बाफना

आचार्य हस्ती इस युग के महान् श्रमण थे, जिनमें श्रमण की आगमोक्त सभी विशेषताएँ विद्यमान थीं। गुरुभक्त श्री बाफना जी ने अपने आलेख में पूज्य आचार्यप्रवर का ऐसा भावपूर्ण सुन्दर रेखाकंन किया है, जो एक सच्चे उत्कृष्ट श्रमण के गुणों से भी हमें परिचित कराता है। विरक्तता, अप्रमत्तता, सरलता, धीरता, अनासक्ति, आचारनिष्ठा, गुरु के प्रति समर्पण, विद्वत्ता, समता, अध्यात्मयोगिता आदि अनेक गुणों का समवाय आचार्य हस्ती को एक महनीय सन्त के रूप में प्रतिष्ठित करता है। -सम्पादक

अनादि काल से अनन्त आत्माएँ कर्म दलिकों का मूलोच्छेद कर शुद्ध, बुद्ध, विमल दशा प्राप्त कर 'मोक्ष' प्राप्त करती रही हैं। जिन-जिन आत्माओं ने मोक्ष प्राप्त किया है वे सभी सामायिक यानी संयम के प्रभाव से ही इस मुकाम को हासिल कर सकी हैं। शासनेश श्रमण भगवान महावीर के ही शब्दों में ''जे के वि गया मोक्खं, जे गच्छन्ति, जे गमिस्संति ते सव्व सामाइय पभावेणं'' अर्थात् जो भी मोक्ष में गये हैं, जो जाते हैं, जो जायेंगे, वे सभी सामायिक के प्रभाव से। स्वतः सिद्ध है कि नवकार मंत्र का पंचम पद ''णमो लोए सव्व साहूणं'' पंच परमेष्ठी के शेष सभी पदों का मातृस्थान है। श्रमण जीवन से ही अमरत्व व सिद्धि की यात्रा प्रारम्भ होती है। यह साधना साधक स्वयं अपने श्रम से अपने-अपने पुरुषार्थ से तय करता है, संभवतः इसी बात को पुष्ट करने के लिये चरम तीर्थंकर भगवान महावीर के साथ 'श्रमण' विशेषण जोड़ा गया है।

आचार्य तीर्थंकर के प्रतिनिधि कहे गये हैं। तीर्थंकरों के अभाव में वे तीर्थंकर के प्रतिरूप समझे जाते हैं। श्रमण संस्कृति के अमरगायक जैन संस्कृति के उन्नायक, जन-जन के आराध्य, लक्षाधिक भक्तों के पूज्य युग मनीषी आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमल जी म.सा. के श्रमण जीवन में हम पंच परमेष्ठी के गुणों का दिग्दर्शन कर सकते हैं। उन्होंने माँ के गर्भ से ही शील सुवास का आस्वादन किया, शिशुवय से ही शिक्षा व संस्कार पाये, अबोध बालवय से ही श्रमणों का छठा व्रत रात्रि भोजन त्याग (चौविहार) स्वीकार किया, दश वर्ष की लघुवय में ही वे अपने महनीय गुरुदेव पूज्यपाद आचार्य श्री शोभा की सन्निधि में 'श्रमण' बन गये, पन्द्रह वर्ष की किशोर वय में महिमामयी रत्नसंघ परम्परा के आचार्य मनोनीत हुए। तरुणाई की कोंपले पूरी फूटे उसके पूर्व में 19 वर्ष 3 माह 20 दिन की वय में ही विधिवत् संघनायक 'णमो आयरियाणं' के पद पर प्रतिष्ठित हो गए। 71 वर्ष का निर्मल निरतिचार संयम-जीवन व 61 वर्ष

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तक अपने धर्म संघ का संघनायकत्व- ये सभी श्रमण भगवान महावीर के शासन के बेमिसाल कीर्तिमान कहे जा सकते हैं। अंतिम वेला में 13 दिवसीय तप संथारे की भव्य साधना से उन्होंने अपने संयम-जीवन पर मानो अमृत कलश प्रतिष्ठापित किया हो। वस्तुतः यह उनके सुदीर्घ संयम-जीवन का शिखर सोपान था। जन्म के साथ ही मृत्यु की ओर कदम आगे बढ़ जाते हैं, उन महापुरुष ने संयम-जीवन के प्रथम क्षण से ही अपने अन्तिम लक्ष्य का निर्धारण कर उस ओर अपने आपको गतिशील कर दिया।

साधक लक्ष्य की पहिचान, लक्ष्य-निर्धारण व लक्ष्य-प्राप्ति का संकल्प कर अप्रमत्तता व सजगता के साथ अनवरत श्रम कर ही सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। पूज्यपाद ने शिशुवय में ही अपने लक्ष्य को पहिचान कर लक्ष्य प्राप्ति का दृढ़ संकल्प कर लिया था जो उनकी अपनी माता के साथ संवाद से स्पष्टतया परिलक्षित होता है-".....मेरा भी मन संसार में रहने का नहीं है।.....मैं भी तुम्हारे साथ ही दीक्षित होना चाहता हूँ।.....माँ उन पूज्यश्री के प्रथम दर्शन के समय से ही मेरा मन जीवन भर उनके चरणों की सुखद, शीतल, छाया में रहने को करता है।" ('नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' से उद्धृत) बालपन में संयम का दृढ़ संकल्प, माता द्वारा प्रदर्शित पावन पथ को सहज अंगीकार करने की दृढ़ भावना तथा मोक्ष-गमन की उत्कट अभिलाषा से संसार को त्याग करने को आतुर वैराग्यभाव, संयम स्वीकार करने के पश्चात् गुरुचरणों में सर्वतोभावेन समर्पण एवं अहर्निश मनसा वचसा कर्मणा उनका अखंडित ब्रह्मचर्य मानो उनके निष्पाप जीवन में एक साथ ही आर्यवज्र, आर्यरक्षित, आर्य जम्बू, गणधर गौतम एवं आर्य स्थूलिभद्र की गुण सौरभ एक साथ सुवासित हो गई हो।

उनके जीवन में कण-कण में प्रसिद्धि नहीं, सिद्धि का भाव समाया था, उनके प्रवचनामृत का लक्ष्य श्रोता को प्रभावित करने का नहीं, उनके जीवन को प्रभावित करने का था। लघु काया में वे एक विराट् व्यक्तित्व थे। उन्होंने औपचारिक शिक्षा भले ही न पाई हो, बड़े से बड़े प्रकाण्ड पंडित व विद्वान भी उनसे अपनी ज्ञान-पिपासा तुष्ट कर अपने आपको धन्य-धन्य समझते वणिक पुत्र होकर भी वे राज्याधिकारियों, न्यायाधिपतियों, अभिभावकों, उद्योगपतियों व बुद्धिजीवियों के गुरु थे। सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी वे सभी के पूज्य थे। वे भक्तों से नहीं, भक्त उनका शिष्यत्व स्वीकार कर तथा वे पदों से नहीं, पद उनसे महिमा मंडित हुए। देश, काल व व्यक्ति जो-जो उनसे जुड़े, धन्य-धन्य हो गये। रत्नकुक्षिधारिणी मां रूपा उन्हें जन्म दे धन्य-धन्य हो गई, बोहरा कुल व पीपाड़ नगर उनके अवतरण से कीर्तिवन्त हो गये, वयःसम्पन्न शिक्षा गुरु हर्षचन्द्र जी म.सा. इस शिशु को धर्मशिक्षा व आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. उन्हें संयम-धन प्रदान कर, जिनशासन को एक चिन्तामणिरत्न प्रदान करने का यशोपार्जन कर गये। रत्न परम्परा उनका सुदीर्घ सान्निध्य संरक्षण पा समृद्ध हो गई, लक्षाधिक भक्त उनके पावन दर्शन, वंदन व सान्निध्य से कृतकृत्य हो गये। जिनकी ओर भी उनकी दृष्टि उठी, वे निहाल हो गए। जिनको भी उन्होंने संभाला, उनका जीवन पवित्र पावन हो गया। गुण सुमन भी उनके

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवन में मानो एक सुन्दर सुगन्धित माला के रूप में ग्रथित हो गए।

उनके विहंसते नयन, ब्रह्म तेज में दीप्त उनका मुखकमल, साधना के ओज से दमकता उनका तन, प्राणिमात्र की कल्याण कामना से बरसती उनकी पावन पीयूषयुत वाणी, सर्वजनहिताय उनका चिन्तन श्रद्धालु भक्त दर्शनार्थी व श्रोता पर सदा-सदा के लिये एक अमिट छाप छोड़ देता। जो एक बार भी उनके चरणों का स्पर्श कर पाया, वह सदा उनका हो गया।

वे सबके मन-मन्दिर के आराध्य थे, पर वे सबसे सर्वथा पृथक् थे। लाखों व्यक्ति उनसे जुड़े, पर न तो वे किसी से जुड़े, न ही उन्होंने किसी को अपने से जोड़ने की चेष्टा की। चुम्बक कब लोहे को आकर्षित करने का प्रयास करता है, उसके चुम्बकत्व से लोह कण स्वयं उस ओर खिंचे चले आते हैं।

संयम-जीवन की पूर्णता भले ही समाधिमरण में कही जाती हो, सामान्य साधक जीवन के अन्तिम लक्ष्य के रूप में समाधिमरण की कामना (मनोरथ) करता है, पर भेद विज्ञान विज्ञाता उस महापुरुष ने जिसने गर्भकाल से ही सांसारिक संयोगों के वियोग को देख लिया हो, धर्मशीला दादी नौज्यांबाई के संथारे के रूप में समाधिमरण का स्वरूप समझ लिया हो व किशोरवय में ही संयमदाता गुरुवर्य पूज्यपाद आचार्य शोभा का सान्निध्य न रह पाने से स्वयं गुरुतर गुरुपद के दायित्व को स्वीकार किया हो, संयम जीवन के प्रथमक्षण से ही मानो समाधिमरण की साधना प्रारम्भ कर दी हो। मात्र 29 वर्ष की युवावय में ही उन्होंने अपने द्वारा विरचित आध्यात्मिक पदों में संघ, शासन व संसार को यह बोध प्रदान किया-

''मैं हूँ उस नगरी का भूप, जहाँ नहीं होती छाया धूप।''
''तन-धन परिजन सब ही पर हैं, पर की आश-निराश,''
''सदा शान्तिमय मैं हूँ, मेरा अचल रूप है खास,''
''ज्ञान दरस-मय रूप तिहारो, अस्थि-मांसमय देह न थारो।''
''दृश्य जगत पुद्गल की माया, मेरा चेतन रूप।''
''पूरण गलन स्वभाव धरे तन मेरा अव्यय रूप।।''

मानवों में श्रेष्ठ ही श्रमण बन पाते हैं पर, वे महापुरुष श्रमणों में भी श्रेष्ठ थे। श्रमण-जीवन का अंश-अंश महान विशेषताओं से परिपूरित होता है, पर सभी विशेषताओं का आधार है अनासक्ति क्योंकि 'किंचित्' को त्याग कर ही तो 'अंकिंचन' बना जा सकता है और अकिंचन ही तो अपने प्रेम साम्राज्य का विस्तार कर सम्पूर्ण का स्वामी बन जाता है, जो भी पाने योग्य है, जो सदा रहने वाला है उस अक्षय अव्याबाध को प्राप्त कर लेता है। उनका समग्र जीवन एक अनासक्त योगी का जीवन रहा।

साधक जीवन का लक्ष्य वीतरागता है। विरक्ता ही वीतरागता की ओर बढ़ने का पावन पथ है जिसका चयन उन्होंने अबोध बाल्य-अवस्था में ही कर लिया था। संसार भोग व ऐश्वर्य से विरक्त योगी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भेद-विज्ञान ''मैं अजर-अमर अविनाशी चेतन हूँ, सभी संयोग पर हैं मेरे नहीं,'' का ज्ञान कर वीतराग बन जाता है। उन महामनीषी का चिन्तन, उनका पावन प्रवचन उनका निष्कलुष आचरण, सभी मानो इसी भेद विज्ञान के साक्षी रहे हों, तभी तो वे ऐसे विरले आचार्यों की श्रेणी में आये जो आलोचना व विधि के साथ पूर्ण सजग अवस्था में अन्तःप्रेरित स्वेच्छा से सबसे निःसंग हो पूर्णतः आत्मस्थ हो गये।

पंच महाव्रतों का निरतिचार पालन, पांच इन्द्रियों पर विजय, चारों कषायों का शमन, भाव, योग व करण की सत्यता, क्षमा, वैराग्य, मन-वचन-काय-समाधरणीया, ज्ञान-दर्शन चारित्र सम्पन्ना, वेदनीय समाअहियासणिया एवं मरणांतिय समा अहियासणिया, ये सभी गुण गुरुदेव में प्रत्यक्ष दृष्टिगत होते थे। श्रमणजीवन की दो विशिष्ट प्रतिज्ञाएँ होती हैं- गुरु आज्ञा को शिरोधार्य करना व हर क्षण अप्रमत्त रहना। 'णमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' के लेखन कार्य के समय हमें उन महाभाग की दैनन्दनियों के अवलोकन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भगवन्त ने जहाँ-जहाँ अपने पूज्यपाद संयम धन प्रदाता गुरुदेव का स्मरण किया है, उनके अंतःकरण के वे उद्‌गार उनके श्रद्धा-समर्पण व भक्ति के स्वतः साक्ष्य हैं। वे शिष्य धन्य होते हैं जिनके घट में गुरु विराजमान होते हैं, पर जो स्वयं गुरु के घर में विराजमान हो जाय, उनकी गुरुभक्ति, आज्ञापालन व श्रद्धा समर्पण का तो कहना ही क्या? वे सच्चे अर्थ में शोभा गुरु के अन्तेवासी थे। जब तक पूज्य गुरुदेव पार्थिव देह में विराजमान रहे- संयम स्वीकार करते समय उनकी मनोभावना- ''जीवन धन आज समर्पित है गुरुदेव तुम्हारे चरणों में.....काया छायावत् साथ रहे, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में'' सदा वृद्धिमान होती रही।

गुरुदेव का प्रत्यक्ष सान्निध्य उन्हें भले ही बहुत कम मिल पाया, पर संयम-जीवन में मानो वे प्रतिपल अपने महनीय गुरुदेव के सान्निध्य में रहे, तभी तो अपने अन्तिम संघ-दायित्व निर्वहन के उत्तराधिकारी आचार्य के मनोनयन में उनके हस्ताक्षर मात्र एक पत्र पर हस्ताक्षर नहीं, वरन् इतिहास में एक माइलस्टोन के रूप में अंकित हो गये -'' शोभाचार्य शिष्य संघ सेवक हस्ती''।

संत भगवंतों के तीन मनोरथ होते हैं- आगमों का अध्ययन, दृढ़ रहकर एकल विहारी बनना व समाधिमरण। गुरु चरणों में समर्पित हो प्रखर मेधा के धनी उन महापुरुष ने आगमों को कंठस्थ किया, आगम रहस्य का तलस्पर्शी अध्ययन कर उसे अपने जीवन में चरितार्थ किया। वे संघ में रहकर भी निःसंग थे, सबके बीच रहते हुए सदा अकेले रहे, इस माने में वे एकलविहारी रहे व उनका समाधिमरण तो अब जगविश्रुत है, इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित है। सरल, सहज जीवन जीने वाले ही समाधिमरण को प्राप्त कर पाते हैं।

बुराई करे नहीं, भलाई का फल चाहे नहीं, भलाई का अभिमान करे नहीं, तब जाकर जीव आलोचना (आत्म-आलोचना) करने का अधिकारी बनता है तथा जब साधक मिले हुए का सदुपयोग कर, क्रियात्मक सेवा करता हुआ भावात्मक सेवा में लगकर अपने स्वयं के दोषों को देखता है तब

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सरलता आती है। स्वयं के दोष और दूसरों के दुःख सहन नहीं होने पर ही सरलता आती है। पूज्यप्रवर के जीवन पुस्तक के हर अध्याय, हर पंक्ति पर यह संदेश प्रत्यक्ष पढ़ा जा सकता है। निरतिचार संयम साधक-तभी तो अपनी दैनन्दिनी (दैनन्दिनी ही नहीं जीवन में)में अंकित कर पाता है- ''सामने वाले को मेरे दोषों का क्या पता? उसे धोखा न हो यह सोचकर अपने में रहे सहे दोषों को निकाल दें।'' आत्म-विजेता उस महापुरुष का अपने आपको जीतना ही लक्ष्य था। दूसरों को जीतने की भावना ही उनके मन-मस्तिष्क में नहीं थी, जीतने की जानकारी देने व अपने गुणों को प्रगट करने का उन्होंने कभी उपक्रम ही नहीं किया। बचपन में ही अपने बाल-सखा भाई तेजमल जी को बांह झुका कर परास्त करने के खेल में विजयी होने पर भी उनके मन की करुणा किस रूप में थी, जरा देखें- ''भाई तेजमल के गिरने से मुझे इस खेल में भी कोई रस नहीं रहा। किसी को गिराने, किसी को हराने का खेल ही मुझे नहीं खेलना है।''

श्रमणोत्तम साधक शिरोमणि संयम के पर्याय परम पूज्य गुरुदेव के श्रमण जीवन की विशिष्टताओं को किसी आलेख में आबद्ध करना विशिष्ट ज्ञानियों के लिये भी संभव नहीं है। जिन श्रमण भगवंतों ने, पूज्या महासतीवृंद ने, साधक शिरोमणियों ने उनका पावन सान्निध्य पा उनसे संयम धन स्वीकार कर उन महापुरुष के गुणों को अपने जीवन में साकार करने के सार्थक कदम बढ़ाये हैं, उन सबके चरणारविन्दों में सश्रद्धा सविनय सभक्ति वंदन के साथ-

''ऐसी हस्ती आप हैं; और न कहीं दिखलाय।
दर्शन से एक बार ही परम भक्त बन जाय,
पाप विनाशक, सत्य उपासक, सर्वगुणों के धारी हैं
नरश्रेष्ठ हुए जिस पुण्य गोद से, धन्य-धन्य महतारी हैं
तीर्थराज गुरु राज हैं, ज्ञान गंग कर स्नान
सबको मिलता है नहीं, ऐसा भाग्य महान,
इसी खुशी में आओ हिलमिल दिल के ताले खोल दो
बस एक बार गुरुराज की जय बोल दो,
बोलिये परमपूज्य आचार्य भगवंत पूज्य श्री हस्तीमल जी म.सा. की जय।''

पुरिसवरगंधहत्थी, मरुधरा के रत्न, जिनशासन के शृंगार, रत्नवंश के देदीप्यमान नक्षत्र, शोभा गुरुवर्य की शोभा, मां रूपा के लाल हम सब भक्तों के भगवान छत्तीस ही कौम के ''पूज्यजी महाराज'' को नमन।

-सी-55, शास्त्रीनगर, जोधपुर-342003(राज.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org